विधिमार्ग प्रकाशक जिनेश्वरसूरि और उनकी विशिष्ट परम्परा

[पुरातत्त्वाचार्य पद्मश्री मुनि जिनविजयजी]

श्रीजिनेश्वरसूरि आचार्य श्रीवर्द्धमानसूरि के शिष्य थे। जिनेश्वरसूरि के प्रगुरु एवं श्रीवर्द्धमानसूरि के गुरु श्रीउद्योतनसूरि थे, जो चन्द्रकुल के कोटिक गण की वज्री शाखा परिवार के थे।

(इन जिनेश्वरसूरि के विषय में, जिनदत्तसूरि कृत गणधरसार्द्धशतक की सुमतिगणि कृत बृहद्वृत्ति में, जिनपालोपाध्याय लिखित खरतरगच्छ बृहद् गुर्वावली में, प्रभाचन्द्राचार्य रचित और किसी अज्ञात प्राचीन पूर्वाचार्य प्रबन्ध एवं अन्यान्य पट्टावलियाँ आदि अनेक ग्रन्थों-प्रबन्धों में कितना ही ऐतिहासिक वृत्तान्त ग्रथित किया हुआ उपलब्ध होता है।)

जिनेश्वरसूरि के समय में जैन यतिजनों की अवस्था

इनके समय में श्वेताम्बर जैन सम्प्रदाय में उन यतिजनों के समूह का प्राबल्य था जो अधिकतर चैत्यों अर्थात् जिन मन्दिरों में निवास करते थे। ये यतिजन जैन मन्दिर, जो उस समय चैत्य के नाम से विशेष प्रसिद्ध थे, उन्हीं में अहर्निश रहते, भोजनादि करते, धर्मोपदेश देते, पठन-पठनादि में प्रवृत्त होते और सोते-बैठते। अर्थात् चैत्य ही उनका मठ या वासस्थान था और इसलिए वे चैत्यवासी के नाम से प्रसिद्ध हो रहे थे। इनके साथ उनके आचार-विचार भी बहुत से ऐसे शिथिल अथवा भिन्न प्रकार के थे जो जैन शास्त्रों में वर्णित निर्ग्रन्थ जैनमुनि के आचारों से असंगत दिखाई देते थे। वे एक तरह के मठपति थे। शास्त्रोक्त आचारों का यथावत् पालन करने वाले यति-मुनि उस समय बहुत कम संख्या में नजर आते थे।

जिनेश्वरसूरि का चैत्यवासियों के विरुद्ध आन्दोलन

शास्त्रोक्त यतिधर्म के आचार और चैत्यवासी यतिजनों के उक्त व्यवहार में, परस्पर बड़ा असामंजस्य देखकर और श्रमण भगवान् महावीर द्वारा उपदिष्ट श्रमण धर्म की इस प्रकार प्रचलित विप्लव दशा से उद्विग्न होकर जिनेश्वर सूरि ने प्रतिकार के निमित्त अपना एक सुविहित मार्ग प्रचारक नया गण स्थापित किया और चैत्यवासी यतियों के विरुद्ध एक प्रबल आन्दोलन शुरू किया।

यों तो प्रथम, इनके गुरु श्री वर्द्धमानसूरि स्वयं ही चैत्यवासी यतिजनों के एक प्रमुख सूरि थे। पर जैन शास्त्रों का विशेष अध्ययन करने पर मन में कुछ विरक्त भाव उदित हो जाने से और तत्कालीन जैन यति सम्प्रदाय की उक्त प्रकार की आचार विषयक परिस्थिति की शिथिलता का अनुभव, कुछ अधिक उद्वेगजनक लगने से, उन्होंने उस अवस्था का त्याग कर, विशिष्ट त्यागमय जीवन का अनुसरण करना स्वीकृत किया था। जिनेश्वरसूरि ने अपने गुरु के इस स्वीकृत मार्ग पर चलना विशेष रूप से निश्चित किया। इतना ही नहीं, उन्होंने उसे सारे सम्प्रदायव्यापी और देशव्यापी बनाने का भी संकल्प किया और उसके लिए आजीवन प्रबल पुरुषार्थ

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

किया। इस प्रयत्न के उपयुक्त और आवश्यक ऐसे ज्ञानबल और चारित्रबल दोनों ही उनमें पर्याप्त प्रमाण में विद्यमान थे, इसलिये उनको अपने ध्येय में बहुत कुछ सफलता प्राप्त हुई और उसी अणहिलपुर में, जहां पर चैत्यवासियों का सबसे अधिक प्रभाव और विशिष्ट समूह था, जाकर उन्होंने चैत्यवास के विरुद्ध अपना पक्ष और प्रतिष्ठान स्थापित किया। चौलुक्य नृपति दुर्लभराज की सभा में, चैत्यवासी पक्ष के समर्थक अग्रणी सूराचार्य जैसे महा-विद्वान् और प्रबल सत्ताशील आचार्य के साथ शास्त्रार्थ कर, उसमें विजय प्राप्त की। इस प्रसंग से जिनेश्वरसूरि की केवल अणहिलपुर में ही नहीं, अपितु सारे गुजरात में, और उसके आस-पास के मारवाड़, मेवाड़, मालवा, वागड़, सिंध और दिल्ली तक के प्रदेशों में खूब ख्याति और प्रतिष्ठा बढ़ी। जगह-जगह सैकड़ों ही श्रावक उनके भक्त और अनुयायी बन गए। इसके अतिरिक्त सैकड़ों ही अजैन गृहस्थ भी उनके भक्त बनकर नये श्रावक बने। अनेक प्रभावशाली और प्रतिभाशील व्यक्तियों ने उनके पास यति दीक्षा लेकर उनके सुविहित शिष्य कहलाने का गौरव प्राप्त किया। उनकी शिष्य-संतति बहुत बढ़ी और वह अनेक शाखा-प्रशाखाओं में फैली। उसमें बड़े-बड़े विद्वान, क्रियानिष्ठ और गुणगरिष्ठ आचार्य उपाध्यायादि समर्थ साधु पुरुष हुए। नवांग-वृत्तिकार अभयदेवसूरि, संवेगरंग-शालादि ग्रन्थों के प्रणेता जिनचन्द्रसूरि, सुरसुन्दरी चरित के कर्त्ता धनेश्वर अपर नाम जिनभद्रसूरि, आदिनाथ चरितादि के रचयिता वर्धमानसूरि, पार्श्वनाथ चरित एवं महावीर चरित के कर्त्ता गुणचन्द्रगणी अपर नाम देवभद्रसूरि, संघपट्टकादि अनेक ग्रन्थों के प्रणेता जिनवल्लभसूरि इत्यादि अनेकानेक बड़े बड़े धुरन्धर विद्वान और शास्त्रकार, जो उस समय उत्पन्न हुए और जिनकी साहित्यिक उपासना से जैन वाङ्मय-भण्डार बहुत कुछ समृद्ध और सुप्रतिष्ठित बना—इन्हीं जिनेश्वरसूरि के शिष्य-प्रशिष्यों में से थे।

विधिपक्ष अथवा खरतरगच्छ का प्रादुर्भाव और गौरव

इन्हीं जिनेश्वरसूरि के एक प्रशिष्य आचार्य श्रीजिन-वल्लभसूरि और उनके पट्टधर श्रीजिनदत्तसूरि (वि० सं० ११६९-१२११) हुए जिन्होंने अपने प्रखर पाण्डित्य, प्रकृष्ट चारित्र और प्रचण्ड व्यक्तित्व के प्रभाव से मारवाड़, मेवाड़, वागड़, सिन्ध, दिल्ली मण्डल और गुजरात के प्रदेश में हजारों अपने नये भक्त श्रावक बनाये—हजारों ही अजैनों को उपदेश देकर नूतन जैन बनाये। स्थान-स्थान पर अपने पक्ष के अनेकों नये जिनमन्दिर और जैन उपाश्रय तैयार करवाये। अपने पक्ष का नाम इन्होंने 'विधिपक्ष' ऐसा उद्घोषित किया और जितने भी नये जिनमन्दिर इनके उपदेश से, इनके भक्त श्रावकों ने बनवाये उनका नाम विधिचैत्य, ऐसा रखा गया। परन्तु पीछे से चाहे जिस कारण से हो—इनके अनुगामी समुदाय को खरतर पक्ष या खरतरगच्छ ऐसा नूतन नाम प्राप्त हुआ और तदनन्तर यह समुदाय इसी नाम से अत्यधिक प्रसिद्ध हुआ जो आज तक अविच्छिन्न रूप से विद्यमान है।

इस खरतरगच्छ में उसके बाद अनेक बड़े बड़े प्रभाव-शाली आचार्य, बड़े-बड़े विद्यानिधि उपाध्याय, बड़े-बड़े प्रतिभाशाली पण्डित मुनि और बड़े-बड़े मांत्रिक, तांत्रिक-ज्योतिर्विद्, वैद्यक-विशारद आदि कर्मठ यतिजन हुए जिन्होंने अपने समाज की उन्नति, प्रगति और प्रतिष्ठा बढ़ाने में बड़ा भारी योग दिया। सामाजिक और साम्प्रदायिक उत्कर्ष की प्रवृत्ति के सिवा, खरतरगच्छा-नुयायी विद्वानों ने संस्कृत, प्राकृत, अपभ्रंश एवं देशीय-भाषा के साहित्य को भी समृद्ध करने में असाधारण उद्यम किया और इसके फलस्वरूप आज हमें भाषा, साहित्य, इतिहास, दर्शन, ज्योतिष, वैद्यक आदि विविध विषयों का निरूपण करने वाली छोटी-बड़ी सैकड़ों-हजारों ग्रन्थकृतियाँ जैन-भण्डारों में उपलब्ध हो रही हैं। खरतर गच्छीय विद्वानों की की हुई यह साहित्योपासना न केवल

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जैनधर्म की ही दृष्टि से महत्त्व वाली हैं, अपितु समुच्चय भारतीय संस्कृति के गौरव की दृष्टि से भी उतनी ही महत्ता रखती है।

साहित्योपासना की दृष्टि से खरतरगच्छ के विद्वान् यति-मुनि बड़े उदारचेता मालूम देते हैं। इस विषय में उनकी उपासना का क्षेत्र केवल अपने धर्म या सम्प्रदाय की बाड़ से बद्ध नहीं है। वे जैन और जैनेतर वाङ्मय का समान भाव से अध्ययन-अध्यापन करते रहे हैं। व्याकरण, काव्य, कोष, छन्द, अलंकार, नाटक, ज्योतिष, वैद्यक और दर्शनशास्त्र तक के अगणित अजैन ग्रन्थों का उन्होंने बड़े आदर से आकलन किया है और इन विषयों के अनेक अजैन ग्रन्थों पर उन्होंने अपनी पाण्डित्यपूर्ण टीकायें आदि रच कर तत्तद् ग्रन्थों और विषयों के अध्ययन कार्य में बड़ा उपयुक्त साहित्य तैयार किया है। खरतरगच्छ के गौरव को प्रदर्शित करने वाली ये सब बातें हम यहां पर बहुत ही संक्षेप में, केवल सूत्ररूप से, उल्लिखित कर रहे हैं। विशेष-हम "युगप्रधानाचार्यगुर्वावलि" नाम से विस्तृत पुरातन पट्टावली प्रकट कर चुके हैं उसमें इन जिनेश्वरसूरि से आरंभ कर, श्रीजिनवल्लभसूरि की परम्परा के खरतरगच्छीय आचार्य श्रीजिनपद्मसूरि के पट्टाभिषिक्त होने के समय तक का-विक्रम संवत् १४०० के लगभग का बहुत विस्तृत और प्रायः विश्वस्त ऐतिहासिक वर्णन दिया हुआ है। उसके अध्ययन से पाठकों को खरतरगच्छ के तत्कालीन गौरव-गाथा का अच्छा परिचय मिल सकेगा।

इस तरह पीछे से बहुत प्रसिद्धिप्राप्त उक्त खरतरगच्छ के अतिरिक्त, जिनेश्वरसूरि की शिष्य-परम्परा में से अन्य भी कई-एक छोटे-बड़े गण-गच्छ प्रचलित हुए और उनमें भी कई बड़े-बड़े प्रसिद्ध विद्वान, ग्रन्थकार, व्याख्यानिक, वादी, तपस्वी, चमत्कारी साधु-यति हुए जिन्होंने अपने व्यक्तित्व से जैन समाज को समुन्नत करने में उत्तम योग दिया।

जिनेश्वरसूरि के जीवन का अन्य यतिजनों पर प्रभाव

जिनेश्वरसूरि के प्रबल पाण्डित्य और उत्कृष्ट चरित्र का प्रभाव इस तरह न केवल उनके निजके शिष्य समूह में ही प्रसारित हुआ, अपितु तत्कालीन अन्यान्य गच्छ एवं यति समुदाय के भी बड़े-बड़े व्यक्तित्वशाली यतिजनों पर उसने गहरा असर डाला और उसके कारण उनमें से भी कई समर्थ व्यक्तियों ने, इनके अनुकरण में क्रियोद्धार, ज्ञानोपासना, आदि की विशिष्ट प्रवृत्ति का बड़े उत्साह के साथ उत्तम अनुसरण किया।

(जिनेश्वरसूरि के जीवन सम्बन्धी साहित्य और उनकी रचनाओं का विशेष अध्ययन मुनि जिनविजय ने कथाकोष की विस्तृत प्रस्तावना में बहुत विस्तार से दिया है, यहां उसके आवश्यक अंश ही प्रस्तुत किये गये हैं)

जिनेश्वरसूरि से जैन समाज में नूतन युग का आरंभ

इनके प्रादुर्भाव और कार्यकलाप के प्रभाव से जैन समाज में एक सर्वथा नवीन युग का आरम्भ होना शुरू हुआ। पुरातन प्रचलित भावनाओं में परिवर्तन होने लगा। त्यागी और गृहस्थ दोनों प्रकार के समूहों में नए संगठन होने शुरू हुए। त्यागी अर्थात् यति वर्ग जो पुरातन परम्परागत गण और कुल के रूप में विभक्त था, वह अब नये प्रकार के गच्छों के रूप में संगठित होने लगा। देवपूजा और गुरु-उपासना की जो कितनी पुरानी पद्धतियां प्रचलित थीं, उनमें संशोधन और परिवर्तन के वातावरण का सर्वत्र उद्भव होने लगा। इनके पहले यतिवर्ग का जो एक बहुत बड़ा समूह चैत्य निवासी होकर चैत्यों की संपत्ति और संरक्षा का अधिकारी बना हुआ था और प्रायः शिथिलाक्रिय और स्वपूजानिरत हो रहा था, उसमें इनके आचारश्रवण और भ्रमणशील जीवन के प्रभाव से बड़े वेग से और बड़े परिमाण में परिवर्तन होना प्रारम्भ हुआ। इनके आदर्शों

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

को लक्ष्य में रखकर अन्यान्य अनेक समर्थ यतिजन चैत्याधिकार का और शिथिलाचार का त्याग कर संयम की विशुद्धि के निमित्त उचित क्रियोद्धार करने लगे और अच्छे संयमी बनने लगे। संयम और तपश्चरण के साथ-साथ, भिन्न-भिन्न विषयों और शास्त्रों के अध्ययन और ज्ञानसंपादन कार्य भी इन यतिजनों में खूब उत्साह के साथ व्यवस्थित रूप से होने लगा। सभी उपादेय विषयों के नये-नये ग्रन्थ निर्माण किये जाने लगे और पुरातन ग्रन्थों पर टीका-टिप्पण आदि रचे जाने लगे। अध्ययन-अध्यापन और ग्रन्थ-निर्माण के कार्य में आवश्यक ऐसे पुरातन जैन-ग्रन्थों के अतिरिक्त ब्राह्मण और बौद्ध सम्प्रदाय के भी व्याकरण, न्याय, अलंकार, काव्य, कोष, छन्द, ज्योतिष आदि विविध विषयों के सभी महत्वपूर्ण ग्रन्थों की पोथियों के संग्रहवाले बड़े-बड़े ज्ञानभण्डार भी स्थापित किये जाने लगे।

अब ये यतिजन केवल अपने-अपने स्थानों में ही बद्ध होकर बैठ रहने के बदले भिन्न-भिन्न प्रदेशों में घूमने लगे और तत्कालीन परिस्थिति के अनुरूप, धर्मप्रचार का कार्य करने लगे। जगह-जगह अजैन क्षत्रिय और वैश्य कुलों को अपने आचार और ज्ञान से प्रभावित कर, नये-नये जैन-श्रावक बनाए जाने लगे और पुराने जैन गोष्ठी-कुल नवीन जातियों के रूप में संगठित किये जाने लगे। पुराने जैन देव-मन्दिरों का उद्धार और नवीन मन्दिरों का निर्माण-कार्य भी सर्वत्र विशेष रूप से होने लगा। जिन यतिजनोंने चैत्यनिवास छोड़ दिया था उनके रहने के लिये ऐसे नये-नये वसति-गृह बनने लगे जिनमें उन यतिजनों के अनुयायी श्रावक भी अपनी नित्य-नैमित्तिक धर्मक्रियायें करने की व्यवस्था रखते थे। ये ही वसति-गृह पिछले काल में उपाश्रय के नाम से प्रसिद्ध हुए। मन्दिरों में पूजा और उत्सवों की प्रणालिकाओं में भी नये-नये परिवर्तन होने लगे और इसके कारण यतिजनों में परस्पर, कितनेक विवादास्पद विचारों और शब्दार्थों पर भी वाद-विवाद होने लगा, और इसके परिणाम में कई नये नये गच्छ और उपगच्छ भी स्थापित होने लगे। ऐसे चर्चास्पद विषयों पर स्वतंत्र छोटे-बड़े ग्रन्थ भी लिखे जाने लगे और एक-दूसरे सम्प्रदाय की ओर से उनका खण्डन-मण्डन भी किया जाने लगा। इस प्रकार इन यतिजनों में पुरातन प्रचलित प्रवाह की दृष्टि से, एक प्रकार का नवीन जीवन-प्रवाह चालू हुआ और उसके द्वारा जैन संघ का नूतन संगठन बनना प्रारम्भ हुआ।

इस तरह तत्कालीन जैन इतिहास का सिंहावलोकन करने से ज्ञात होता है कि विक्रम की ११ वीं शताब्दी के प्रारंभ में जैन यतिवर्ग में एक प्रकार से नूतन युग की उषा का आभास होने लगा, जिसका प्रकट प्रादुर्भाव जिनेश्वरसूरि के गुरु वर्धमानसूरि के क्षितिज पर उदित होने पर दृष्टिगोचर हुआ। जिनेश्वरसूरि के जीवनकार्य ने इस युग-परिवर्त्तन को सुनिश्चित मूर्त्त स्वरूप दिया। तब से लेकर पिछले प्रायः ९०० वर्षों में, इस पश्चिम भारत में जैन धर्म के जो सांप्रदायिक और सामाजिक स्वरूप का प्रवाह प्रचलित रहा उसके मूल में जिनेश्वरसूरि का जीवन सबसे अधिक विशिष्ट प्रभाव रखता है और इस दृष्टि से जिनेश्वरसूरि को, जो उनके शिष्य-प्रशिष्यों ने, युगप्रधान पदसे संबोधित और स्तुतिगोचर किया है वह सर्वथा ही सत्य वस्तुस्थिति का निदर्शक है।

जिनेश्वरसूरि एक बहुत भाग्यशाली साधु पुरुष थे। इनकी यशोरेखा एवं भाग्य रेखा बड़ी उत्कट थी। इससे इनको ऐसे-ऐसे शिष्य और प्रशिष्यरूप महान् सन्ततिरत्न प्राप्त हुए जिनके पाण्डित्य और चारित्र्य ने इनके गौरव को दिगन्तव्यापी और कल्पान्त स्थायी बना दिया। यों तो प्राचीनकाल में, जैन संप्रदाय में सैकड़ों ही ऐसे समर्थ आचार्य हो गए हैं जिनका संयमी जीवन जिनेश्वरसूरि के समान ही महत्वशाली और प्रभावपूर्ण था; परन्तु जिनेश्वरसूरि के जैसा विशाल-प्रज्ञ और विशुद्ध संयमवान्, विपुल शिष्य-समुदाय शायद बहुत ही थोड़े

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आचार्यों को प्राप्त हुआ होगा। जिनेश्वरसूरि के शिष्य-प्रशिष्यों में एक-से-एक बढ़ कर अनेक विद्वान् और संयमी पुरुष हुए और उन्होंने अपने महान् गुरु की गुणगाथा का बहुत ही उच्चस्वर से खूब ही गान किया है। सद्भाग्य से इनके ऐसे शिष्य प्रशिष्यों की बनाई हुई बहुत सी ग्रंथ-कृतियां आज भी उपलब्ध हैं और उनमें से हमें इनके विषय की यथेष्ट गुरु-प्रशस्तियां पढ़ने को मिलती हैं।

चैत्यवास के विरुद्ध जिनेश्वरसूरि ने जिन विचारों का प्रतिपादन किया था, उनका सबसे अधिक विस्तार और प्रचार वास्तव में जिनवल्लभसूरि ने किया था। उनके उपदिष्ट मार्ग का इन्होंने बड़ी प्रखरता के साथ समर्थन किया और उसमें उन्होंने अपने कई नये विचार और नए विधान भी सम्मिलित किये।

जिनवल्लभसूरि

जिनवल्लभसूरि मूल में मारवाड़ के एक बड़े मठाधीश चैत्यवासी गुरु के शिष्य थे परन्तु वे उनसे विरक्त होकर गुजरात में अभयदेवसूरि के पास शास्त्राध्ययन करने के निमित्त उनके अन्तेवासी होकर रहे थे। ये बड़े प्रतिभाशाली विद्वान, कवि, साहित्यज्ञ, ग्रन्थकार और ज्योतिष शास्त्र-विशारद थे। इनके प्रखर पाण्डित्य और विशिष्ट वैशारद्य को देखकर अभयदेवसूरि इन पर बड़े प्रसन्न रहते थे और अपने मुख्य दीक्षित शिष्यों की अपेक्षा भी इन पर अधिक अनुराग रखते थे। अभयदेवसूरि चाहते थे कि अपने उत्तराधिकारी पद पर इनकी स्थापना हो, परन्तु ये मूल चैत्यवासी गुरु के दीक्षित शिष्य होने से शायद इनको गच्छनायक के रूप में अन्यान्य शिष्य स्वीकार नहीं करेंगे ऐसा सोचकर अपने जीवनकाल में वे इस विचार को कार्य में नहीं ला सके। उनके पट्टधर के रूप में वर्धमानाचार्य (आदिनाथ चरितादि के कर्ता) की स्थापना हुई, तथापि अंतावस्था में अभयदेव-सूरि ने प्रसन्नचन्द्रसूरि को सूचित किया था कि योग्य समय पर जिनवल्लभ को आचार्य पद देकर मेरा पट्टाधिकारी बनाना परन्तु वैसा उचित अवसर आने के पहले ही प्रसन्नचन्द्रसूरिका स्वर्गवास हो गया। उन्होंने अभयदेवसूरिजी की उक्त इच्छा को अपने उत्तराधिकारी पट्टधर देवभद्राचार्य के सामने प्रकट किया और सूचित किया कि इस कार्य को तुम संपादित करना।

अभयदेवसूरि के स्वर्गवास के बाद अणहिलपुर और स्तम्भतीर्थ जैसे गुजरात के प्रसिद्ध स्थानों में जहां अभयदेव के दीक्षित शिष्यों का प्रभाव था, वहां से अपरिचित स्थान में जाकर अपने विद्याबल के सामर्थ्य द्वारा जिनवल्लभ ने अपने प्रभाव का कार्यक्षेत्र बनाना चाहा। इसके लिए मेवाड़ की राजधानी चित्तौड़ को इन्होंने पसन्द किया, वहां इनकी यथेष्ट मनोरथ सिद्धि हुई। फिर मारवाड़ के नागौर आदि स्थानों में भी इनके बहुत से भक्त-उपासक बने। धीरे-धीरे इनका प्रभाव मालवा में भी बढ़ा। मेवाड़, मारवाड़ में तब बहुत से चैत्यवासी यति समुदाय थे उनके साथ इनकी प्रतिस्पर्धा भी खूब हुई। इन्होंने उनके अधिष्ठित देवमन्दिरों को अनायतन ठहराया और उनमें किये जाने वाले पूजन उत्सवादि को अशास्त्रीय उद्घोषित किया। अपने भक्त उपासकों द्वारा अपने पक्ष के लिए जगह-जगह नए मन्दिर बनवाये और उनमें किये जाने वाले पूजादि विधानों के लिए कितनेक नियम निश्चित किये। इस विषय के छोटे बड़े कई प्रकरण और ग्रन्थादि की भी इन्होंने रचना की।

देवभद्राचार्य ने इनके बढ़े हुए इस प्रकार के प्रौढ़ प्रभाव को देखकर और इनके पक्ष में सैकड़ों उपासकों का अच्छा समर्थ समूह जानकर इनको आचार्य पद देकर अभयदेवसूरि के पट्टधर रूप में इन्हें प्रसिद्ध करने का निश्चय किया। जिनेश्वरसूरि के शिष्यसमूह में उस समय शायद देवभद्राचार्य ही सबसे अधिक प्रतिष्ठा-सम्पन्न और सबसे अधिक वयोवृद्ध पुरुष थे। वे इस कार्य के लिए गुजरात से रवाना होकर चित्तौड़ पहुँचे। यह चित्तौड़ ही जिनवल्लभसूरि

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

के प्रभाव का उद्गम एवं केन्द्र स्थान था। यहीं पर सबसे पहले जिनवल्लभसूरि के नये उपासक भक्त बने और यहीं पर इनके पक्ष का सबसे पहिला वीर विधि चैत्य नामक विशाल जैन मन्दिर बना। वि० सं० ११६७ के आषाढ़ मास में इनको इसी मन्दिर में आचार्य पद पर प्रतिष्ठित कर देवभद्राचार्य ने अपने गच्छपति गुरु प्रसन्नचन्द्रसूरि के उस अन्तिम आदेश को सफल किया। पर दुर्भाग्य से ये इस पद का दीर्घकाल तक उपभोग नहीं कर सके। चार ही महीने के अन्दर इनका उसी चित्तौड़ में स्वर्गवास हो गया। इस घटना को जानकर देवभद्राचार्य को बड़ा दुःख हुआ।

जिनदत्तसूरि

जिनवल्लभसूरि ने अपने प्रभाव से मारवाड़, मेवाड़, मालवा, बागड़ आदि देशों में जो सैकड़ों ही नये भक्त उपासक बनाये थे और अपने पक्ष के अनेक विधि-चैत्य स्थापित किये थे। उनका नियामक ऐसा कोई समर्थ गच्छ-नायक यदि न रहा तो वह पक्ष छिन्न-भिन्न हो जायगा और इस तरह जिनवल्लभसूरि का किया हुआ कार्य विफल हो जायगा, यह सोच कर देवभद्राचार्य, जिनवल्लभसूरि के पट्ट पर प्रतिष्ठित करने के लिए अपने सारे समुदाय में से किसी योग्य व्यक्तित्व वाले यतिजन की खोज करने लगे। उनकी दृष्टि धर्मदेव उपाध्याय के शिष्य पंडित सोमचन्द्र पर पड़ी जो इस पद के सर्वथा योग्य एवं जिन-वल्लभ के जैसे ही पुरुषार्थी, प्रतिभाशाली, क्रियाशील और निर्भय प्राणवान व्यक्ति थे। देवभद्राचार्य फिर चित्तौड़ गए और वहां पर जिनवल्लभसूरि के प्रधान-प्रधान उपासकों के साथ परामर्श कर उनकी सम्मति से सं० ११६९ के वैशाख मास में सोमचन्द्र गणि को आचार्य पद देकर जिनदत्तसूरि के नाम से जिनवल्लभसूरि के उत्तराधिकारी आचार्य पद पर उन्हें प्रतिष्ठित किया। जिनवल्लभसूरि के विशाल उपासक वृन्द का नायकत्व प्राप्त करते ही जिनदत्तसूरि ने अपने पक्ष की विशिष्ट संघटना करनी शुरू की। जिनेश्वरसूरि प्रतिपादित कुछ मौलिक मन्तव्यों का आश्रय लेकर और कुछ जिनवल्लभसूरि के उपदिष्ट विचारों को पल्लवित कर इन्होंने जिनवल्लभ द्वारा स्थापित उक्त विधिपक्ष नामक संघ का बलवान और नियमबद्ध संगठन किया जिसकी परम्परा का प्रवाह आठ सौ वर्ष पूरे हो जाने पर भी अखण्डित रूप से चलता है।

जिनदत्तसूरि ने प्राकृत, संस्कृत और अपभ्रंश भाषा में छोटे-बड़े अनेक ग्रन्थों की रचना की। इनमें एक गणधर-सार्द्धशतक नामक ग्रंथ है जिसमें इन्होंने भगवान महावीर के शिष्य गणधर गौतम से लेकर अपने गच्छपति गुरु जिनव-ल्लभसूरि तक के महावीर के शासनमें होने वाले और अपनी संप्रदाय परंपरा में माने जाने वाले प्रधान-प्रधान गणधारी आचार्योंकी स्तुति की है। उन्होंने १५० गाथा के प्रकरण में आदि की ६२ गाथाओं तक में तो पूर्वकाल में हो जाने वाले कितने पूर्वाचार्यों की प्रशंसा की है। ६३ से लेकर ८४ तक की गाथाओं में वर्द्धमानसूरि और उनके शिष्यसमूह में होने वाले जिनेश्वर, बुद्धिसागर, जिनचन्द्र, अभयदेव, देवभद्रादि अपने निकट पूर्वज गुरुओं की स्तुति की है। ८५वीं गाथा से लेकर १४७ तक की गाथाओं में अपने गण के स्थापक गुरु जिनवल्लभ की बहुत ही प्रौढ़ शब्दों में तरह-तरह से स्तवना की है। जिनेश्वरसूरि के गुणवर्णन में इन्होंने इस ग्रन्थ में लिखा है कि वर्द्धमानसूरि के चरणकमलों में भ्रमर के समान सेवारसिक जिनेश्वरसूरि हुए वे सब प्रकारके भ्रमों से रहित थे अर्थात् अपने विचारों में निर्भ्रम थे, स्वसमय और परसमय के पदार्थ सार्थ का विस्तार करने में समर्थ थे। इन्होंने अणहिलवाड़ में दुर्लभराज की सभा में प्रवेश करके नामधारी आचार्यों के साथ निर्विकार भाव से शास्त्रीय विचार किया और साधुओं के लिये वसति-निवास की स्थापना कर अपने पक्ष का स्थापन किया। जहां पर गुरु-क्रमागत सद्वार्ता का नाम भी नहीं सुना जाता था, उस

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

गुजरात देश में विचरण कर इन्होंने वसतिमार्ग को प्रकट किया।

जिनदत्तसूरि की इसी तरह की एक और छोटी सी (२१ गाथा की) प्राकृत पद्य रचना है जिसका नाम है-सुगुरु पारतन्त्र्य स्तव। इसमें जिनेश्वरसूरि की स्तवना में वे कहते हैं कि जिनेश्वर अपने समय के युगप्रवर होकर सर्व सिद्धान्तों के ज्ञाता थे। जैन मत में जो शिथिलाचार रूप चोर समूह का प्रचार हो रहा था उसका उन्होंने निश्चल रूप से निर्दलन किया। अणहिलवाड़ में दुर्लभराज की सभा में द्रव्य लिंगी (वेशधारी) रूप हाथियों का सिंह की तरह विदारण कर डाला। स्वेच्छाचारी सूरियों के मतरूपी अन्धकार का नाश करने में सूर्य के समान थे जिनेश्वरसूरि प्रकट हुए।

जिनेश्वरसूरि के साक्षात् शिष्य-प्रशिष्यों द्वारा किये गये उनके गौरव परिचयात्मक उल्लेखों से हमें यह अच्छी तरह ज्ञात हुआ कि उनका आंतरिक व्यक्तित्व कैसा महान् था। जिनदत्तसूरि के किये गये उपर्युक्त उल्लेखों में एक ऐतिहासिक घटना का हमें सूचन मिला कि उन्होंने गुजरात के अणहिलवाड़ के राजा दुर्लभराज की सभा में नामधारी आचार्यों के साथ वाद-विवाद कर उनको पराजित किया और वहां पर वसतिवास की स्थापना की।

श्री जिनचन्द्रसूरि

जिनेश्वरसूरि के पट्टधर शिष्य जिनचन्द्रसूरि हुए। अपने गुरु के स्वर्गवास के बाद यही उनके पट्ट पर प्रतिष्ठित हुए और गण प्रधान बने। इन्होंने अपने बहुश्रुत एवं विख्यात-कीर्ति ऐसा लघु गुरु-बन्धु अभयदेवाचार्य की अभ्यर्थना के वश होकर संवेगरंगशाला नामक एक संवेग भाव के प्रतिपादक शांतरस प्रपूर्ण एवं वृहद प्रमाण प्राकृत कथा ग्रन्थ की रचना सं० ११२५ में की।

श्री अभयदेवसूरि

जिनेश्वरसूरि के अनुक्रम में शायद तीसरे परन्तु ख्याति और महत्ता की दृष्टि से सर्वप्रथम ऐसे महान् शिष्य श्री अभयदेवसूरि हुए, जिन्होंने जैनागम ग्रन्थों में जो एकादश-अङ्ग सूत्र ग्रन्थ हैं, इनमें से नौ अंग (३ से ११) सूत्रों पर सुविशद संस्कृत टीकाएं बनाई। अभयदेवाचार्य अपनी इन व्याख्याओं के कारण जैन साहित्याकाश में कल्पान्त स्थायी नक्षत्र के समान सदा प्रकाशित और सदा प्रतिष्ठित रूप में उल्लिखित किये जायेंगे। श्वेताम्बर सप्रदाय के पिछले सभी गच्छ और सभी पक्ष वाले विद्वानों ने अभयदेवसूरि को बड़ी श्रद्धा और सत्यनिष्ठा के साथ एक प्रमाणभूत एवं तथ्यवादी आचार्य के रूप में स्वीकृत किया है और इनके कथनों को पूर्णतया आप्तवाक्य की कोटि में समझा है। अपने समकालीन विद्वत् समाज में भी इनकी प्रतिष्ठा बहुत ऊँची थी। शायद ये अपने गुरु से भी बहुत अधिक आदर के पात्र और श्रद्धा के भाजन बने थे।

श्री जिनदत्तसूरि

जिनदत्तसूरि, जिनेश्वरसूरि के साक्षात् प्रशिष्यों में से ही एक थे। इनके दीक्षा-गुरु धर्मदेव उपाध्याय थे जो जिनेश्वरसूरि के स्वहस्त दीक्षित अन्यान्य शिष्यों में से थे। इनका मूल दीक्षा नाम सोमचन्द्र था, हरिसिंहाचार्य ने इनको सिद्धान्त ग्रन्थ पढ़ाये थे। इनके उत्कट विद्यानुराग पर प्रसन्न होकर देवभद्राचार्य ने अपना वह प्रिय कटाखरण (लेखनी), जिससे उन्होंने अपने बड़े-बड़े चार ग्रन्थों का लेखन किया था, इनको भेंट के स्वरूप में प्रदान किया था। ये बड़े ज्ञानी ध्यानी और उग्रतविहारी थे। जिनवल्लभसूरि के स्वर्गवास के पश्चात् इनको उनके उत्तराधिकारी पद पर देवभद्राचार्य ने आचार्य के रूप में स्थापित किया था।

[कथाकोष प्रकरण की प्रस्तावना से]

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

दादावाड़ी-दिग्दर्शन की प्रस्तावना में मुनि जिनविजयजी लिखते हैं :—

खरतर गच्छ के मुख्य युगप्रधान आचार्य श्री जिनदत्तसूरि तथा उनके उत्तराधिकारी आचार्य-वर्य मणिधारी श्रीजिनचन्द्रसूरि, श्रीजिनकुशलसूरि एवं अकबर-प्रतिबोधक श्रीजिनचन्द्रसूरि के स्मारक रूप में दादावाड़ी नाम से जितने गुरुपूजा स्थान बने हैं उतने अन्य किसी गच्छ के पूर्वाचार्यों के स्मारक रूप में ऐसे खास स्मारक-स्थान बने ज्ञात नहीं होते।

इन पूर्वाचार्यों मे मुख्य स्थान श्रीजिनदत्तसूरि का है। श्रीजिनदत्तसूरि का स्वर्गगमन राजस्थान के प्राचीन एवं प्रधान नगर अजमेर में वि० सं० १२११ में हुआ। जहाँ पर उनके शरीर का अग्नि-संस्कार हुआ, वहाँ पर भक्तजनों ने सर्वप्रथम उस स्थान पर स्मारक स्वरूप देवकुल बनाया और उसमें स्वर्गीय आचार्यवर्य के चरणचिन्ह स्थापित किये।

श्रीजिनदत्तसूरि एक महान् प्रभावशाली आचार्य थे। ज्ञान और क्रिया के साथ ही उनमें अद्भुत संगठन शक्ति और निर्माण शक्ति थी। उन्होंने अपने प्रखर पाण्डित्य एवं ओजःपूर्ण संयम के प्रभाव से हजारों की संख्या में नये जैन धर्मानुयायी श्रावक कुलों का विशाल संघ निर्माण किया। राजस्थान में आज जो लाखों ओसवाल जातीय जैन जन हैं उनके पूर्वजों का अधिकांश भाग, इन्हीं जिनदत्तसूरिजी द्वारा प्रतिबोधित और सुसंगठित हुआ था। बाद में उत्तरोत्तर इन आचार्य के जो शिष्य-प्रशिष्य होते गए वे भी महान् गुरु का आदर्श सन्मुख रखते हुए इस संघ-निर्माण का कार्य सुन्दर रूप से चलाते और बढ़ाते रहे। श्रीजिनदत्तसूरि के ये सब शिष्य-प्रशिष्य धर्म प्रचार और संघनिर्माण के उद्देश्य से भारतवर्ष के जिन-जिन स्थानों में पहुंचे, वहां पर देवस्थान के साथ-साथ ही वे युगप्रवर्तक प्रवर गुरु के स्मारक रूप में छोटे-मोटे गुरुपूजा स्थान भी बनाते रहे और उनमें सूरिजी के चरणचिन्ह अथवा मूर्ति स्थापित करते रहे। ये स्थान आज सब दादावाड़ी के नाम से प्रसिद्धि प्राप्त कर रहे हैं।

श्रीजिनदत्तसूरि महान् विद्वान और चारित्रशील होने के उपरान्त एक विशिष्ट चमत्कारी महात्मा भी माने जाते हैं अतः उनके नाम-स्मरण तथा चरण पूजन द्वारा भक्तों की मनोकामनाएँ भी सफल होती रही है। ऐसी श्रद्धा पूर्वकाल से इनके अनुयायी भक्तजनों में प्रचलित रही है अतः इस कारण से भी इनकी पूजा निमित्त इन देवकुलों, छत्रियों, स्तूपों आदि का निर्माण होता रहा है।

श्रीजिनदत्तसूरि के बाद उनकी पट्ट-परम्परा में होने वाले मणिधारी श्रीजिनचन्द्रसूरिजी, श्रीजिनकुशलसूरिजी तथा अकबर-प्रतिबोधक श्रीजिनचन्द्रसूरिजी के विषय में भी चमत्कारी होने की बड़ी श्रद्धा भक्तजनों में प्रचलित है। इसलिये प्रायः इन चारों आचार्यों की भी सम्मिलित चरण पादुकाएं, मूर्त्ति आदि प्रतिष्ठित और पूजित होती रही है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org